मुखपृष्ठ
साहित्यकारों की वेबपत्रिका
साहित्यकारों की वेबपत्रिका
साहित्यसुधा
वर्ष: 3, अंक 57, मार्च(द्वितीय), 2019

याज्ञसेनी

डॉ० सच्चिदानन्द झा

वर्षा ऋतु के आगमन का आभास पाते ही ग्रीष्म ऋतु की पतझड़ से छायी उदासी धीरे-धीरे कम होने लगी। ऋतु मिलन के आगमन होते ही नव किसलय से प्रकृति आलोड़ित होने लगी। दासी धात्रेयिका ने ऋतु मिलन काल द्रौपदी के निर्देश पर मधुशय्या सजायी। द्रौपदी हर कला में निष्णात थी। साहित्य का सृजन करना, चित्रकला को जीवन्त रूप देना, कवित्व की पारखी होना, वाक्य चातुर्य्य होना इत्यादि सब कुछ थी उसमें। आखिर क्यों नहीं हो ये सब गुण उसमें, याज्ञसेनी जो थी वह। याज्ञसेनी अर्थात् यज्ञ से संभूत। ऋषियों द्वारा किया गया यज्ञ अर्थात् तप से प्रकट योग युक्ति।

रात्रि में द्रौपदी का श्रृंगार करने के बाद दासी धात्रेयिका बोली, "महाराज्ञी! कल तो मैं आर्यश्रेष्ठ से इस श्रृंगार के लिये पारितोषिक मांगूगी।"

द्रौपदी यह सुनकर मुस्कुरा उठी और अपने गले से एक हार उतार कर बोली, " मालिनी! कल क्यों? आज ही तू यह हार ले जा। उनसे तुम कल कुछ मत मांगना।"

"उन्हीं से पारितोषिक लेने में श्रृंगार की श्रेष्ठता आंकी जायेगी," यह कहकर धात्रेयिका वहां से मुस्कुराती चली गई, किन्तु महाराज्ञी से जाने की आज्ञा लेना ना भूली।

निभृत रात्रि में द्रौपदी के शयनकक्ष में प्रवेश करते ही अर्जुन ने कहा, "कृष्णा! तेरी शयनकक्ष की सज्जा तो अपूर्व है। विभिन्न रंगों का सामंजस्य ऋतु-मिलन अनुरूप अद्भुत है।"

द्रौपदी कुछ नही बोली, मात्र मुस्कुराती रही कृष्ण की तरह। कुछ ही क्षण के पश्चात अर्जुन अपनी दृष्टि द्रौपदी पर डालते हुए बोला, "कृष्णा! सखा के नाम से तुम्हारे नाम का समतुल्य रहने से तुमसे विवाह करने की आकांक्षा ने पांचाल के स्वयंवर में मेरी जीत सुनिश्चित की है।"

द्रौपदी यह सुनकर लाज से दुहरी हो गई। अपने होठों पर मुस्कान बिखेरती हुई बोली, "आर्य! क्या नाम से ही तृप्ति हो गई?"

"तुमको जब-जब मैं देखता हूँ और जब-जब कृष्णा कहकर पुकारता हूँ, तब-तब मुझे केशव का स्मरण होता रहता है, इतनी बड़ी तृप्ति संसार की किसी भी परितृप्ति से क्या कम है?" यह कहकर अर्जुन पलंग पर बैठ गया।

द्रौपदी विस्मित होकर प्रश्न कर बैठी, "स्वामी! क्या सम्पूर्ण सृष्टि में यही बड़ी तृप्ति है?"

“हाँ, कृष्णा! सखा से भी बढ़कर सखा का नाम महत्व रखता है। ‘कृष्ण’ ब्रह्म वाचक शब्द है। कितना लुभावना नाम है? इस शब्द के स्मरण मात्र से ईश की कृपा निःसृत होने लगती है।” यह कहकर अर्जुन चुप हो गया।

कुछ देर के लिए शयनकक्ष में निभृत नीरवता छा गई। अर्जुन ने ही नीरवता भंग करते हुए पूछा, “कृष्णा! सुना है तुमने कुछ साहित्यिक रचना की है?

“किसने कहा है?” द्रौपदी अचकचाती हुई पूछ बैठी।

“सखा ने! वे तो तुम्हारी रचना गुनगुनाते भी रहते हैं,” अर्जुन मंद मुस्कान के साथ उत्तर में बोला।

उत्तर सुनकर द्रौपदी झेंप गई। वह लजाती हुई पूछ बैठी, “क्या मेरी रचना को वे गाते भी है?”

“हाँ, कृष्णा! वे तुम्हारी रचना को गा भी लेते हैं और आत्मबिभोर होकर मुरली की धुन पर बजा भी लेते हैं।” यह कहकर अर्जुन झांकने लगा द्रौपदी की आँखों में।

द्रौपदी की आँखें प्रशंसित होकर नीचे झुक गई। कुछ ही क्षण के पश्चात वह बोली, “योग युक्ति के सहारे देह स्थित वंशी से निःसृत ब्रह्म नाद तरंग को कोई योगाभ्यासी ही समझ सकते हैं।”

यह सुनकर अर्जुन चौंक गया। उसने द्रौपदी से एक सार्थक कविता सुनाने के लिये अनुरोध करते हुए कहा, “कृष्णा! सार्थक साहित्य की रचना करना साहित्यकार का दायित्व होता है। प्रजाजनों में विद्रुपता फैलाने वाली रचना सृजित करने से अच्छा है, प्रेम की प्रतीति होने वाली रचना प्रजाजनों के लिये सृजित करना। कणिक की काव्य रचना से प्रभावित होकर हस्तिनापुर के राजप्रासाद तक विद्रुपता फैल गई है।”

“स्वामी! छिद्रान्वेषण करने से अच्छा है प्रेम की प्रतीति हो समाज में,” यह कहकर द्रौपदी अपनी रचना सुनाने लगी।

द्रौपदी के गाते ही सम्पूर्ण शयनकक्ष स्वर लहरी से निनादित हो उठा। दिव्य रचना सुनाकर द्रौपदी लजा गई। उसने अपनी अधर पर अंगुली रखकर होठों को धीरे से अन्दर की ओर भींच लीं।

द्रौपदी की आँखों में आँखें डालकर अर्जुन बोला, “कृष्णा! ऐसी प्रेमातुर रचना सखा के अतिरिक्त किसी अन्य को तुम अभिइंगित कर रचती तो मैं आजन्म तुम्हें क्षमा नहीं करता।”

मुस्कुराती हुई द्रौपदी कुछ नहीं बोली, सिर्फ हँसने लगी। उसके हँसने से ऐसा लगा मानो हीरे के कई कण एक साथ झरने लगे हों।

कुछ ही क्षण के पश्चात अर्जुन ने मुस्कुराते हुए कहा, “यह तुम्हारा दोष नहीं है, कृष्णा! सखा का एक झलक भी कोई अनजाने में भी पा लेता है तो वह इनकी मादक नत्रों और रसभरी होठों की मुस्कान पर न्योछावर हो जाता है।”

द्रौपदी खिलखिलाकर हँस पड़ी।

द्रौपदी की निराभिमानी मुस्कान का अवलोकन करते हुए अर्जुन ने कहा, "कृष्णा! तुम्हारी अनुभूति काव्य बनकर उभर आई है। शब्दों के सार्थक प्रयोग से प्रतीयमान अर्थों में अनुभूतियों को उकेरने में तुम निष्णात हो। धन्य हो तुम और धन्य है तेरी रचना।" अपनी प्रशंसा सुनकर भी द्रौपदी कुछ नहीं बोली।
अर्जुन का मुग्ध और सौम्य रूप देखकर द्रौपदी सोचने लगी, "तन से भी बढ़कर मोहक है इनका मन। पत्नी को और क्या चाहिये!"

तभी कृष्ण का आभास कृष्णा को और केशव की आहट किरीटी को मिलने लगी।वे दोनों यह देखकर हर्षित हो गये कि कृष्ण मृदु-मृदु मुस्कुराते हुए शयन कक्ष के कपाट निकट खड़े हैं। तभी कृष्ण ने मुस्कुराते हुए द्रौपदी से अनुमति मांगा, "क्या मै सखी के शयनकक्ष में प्रवेश कर सकता हूँ?"

"हाँ, हाँ। आइए, पधारिए!" द्रौपदी और अर्जुन दोनों एक साथ बोल पड़े।

द्रौपदी के शयनकक्ष में कृष्ण के प्रवेश करते ही विविध पुष्पों के सुगंध से सम्पूर्ण कक्ष सुवासित हो गया। कक्ष में पहुँचते ही कृष्ण ने कहा, "सखी! अर्जुन तो श्वासों में लेने वाले प्रत्येक वायु को भी मुझे ही अर्पित करता है। निशार्द्ध हो रही है, इतना निर्मम मत बनो, सखी! अब तो अर्जुन को प्रेमानुभूति कराओ। प्रेम करना समझाओ। प्रेम ही दुरूह जीवन में आने वाली कठिनाईयों का निराकरण पल भर में कर डालता है।"

तभी अर्जुन ने इसके प्रतिकार में कहा, "केशव! प्रेम क्या सीखने या सिखाने की कोई वस्तु है? यह तो स्वतः हो जाता है।"

इस पर द्रौपदी खिलखिला कर हँस पड़ी। वह बोली, "सखा को गोकुल का स्नेह संसार और वृंदावन के प्रेम प्रसंग का अनुभव तो होगा ही! फिर अर्जुन की ओर मुड़कर बोली, "उस प्रेम के प्रभाव का अनुमान तो आर्यश्रेष्ठ को भी अबतक हो ही गया होगा?"

यह सुनकर अर्जुन चौंक पड़ा और बोला, "कृष्णा! ठिठोली तो नहीं कर रही हो मुझसे ?"

अर्जुन को विस्मय में पड़े देख द्रौपदी अकलुष मुस्कुरायी और बोली, "चंचल प्राण ही मन है। मन में प्रज्ञा के कारण अनुभव और अनुभूति की तरंगें उत्सर्जित होती है। प्रज्ञा के बिना निःस्वार्थ प्रेम असंभव है।"

"सुना, अर्जुन! सात्विक प्रेम से ही ईश में प्रीति और उनकी प्रतीति होती है। प्रेम का उपहास उड़ाना या प्रेम की ओट में छल-कपट करना अनर्थकारी होता है।" कृष्ण यह कहकर हास्य की अद्भुत छटा बिखेरते हुए अर्जुन की ओर देखने लगे। फिर द्रौपदी की ओर मुड़कर बोले, "सखी! प्रेम करना तो कोई तुमसे सीखे !"

"धत्! आप भी परिहास करने लगे !," यह कहकर द्रौपदी लजा गई।

इस पर कृष्ण ने कहा, "ठिठोली नहीं कर रहा हूँ। सत्य कह रहा हूँ, सखी! मुझ पर विश्वास करो।"

द्रौपदी तत्क्षण बोली, " ईश्श्श्...श ! वृन्दावन की गोपिकाएं आप पर विश्वास करके तो विरह में पछता रही है, अब क्या मुझे भी विरहातुर होकर पछताने के लिये विवश करेंगे?"

“उन गोपिकाओं की बात मत पूछो, सखी! मैं तो जन्म-जन्म का ऋणी हो गया हूँ उन सबका।“ यह कहते ही कृष्ण के दोनों नेत्र अश्रुजल से वाष्पाच्छादित हो गये।

कृष्ण की आँखों में उदात्त आंसू देखकर अर्जुन ने स्थिति को संभालते हुए बड़ी चतुराई से विषयान्तर करना चाहा, किन्तु कृष्ण ने उस चतुराई की अवहेलना करते हुए गंभीर होकर कहा, “लोगों ने उन सबके विरह अग्नि का अंश मात्र ही समझ पाया है। वास्तविक विरह तो कोई समझ ही नहीं पाया है। उन सबकी विरह गाथा ने तो मुझे विवश कर दिया है, उन सबके मन में सतत निवास करने के लिये।”

अब द्रौपदी भी कृष्ण के आँखों में अश्रुजल देखकर प्रसंग में परिवर्तन लाने के लिये बोली, “सखा! कुरु वंश क्या सदैव से.....? किन्तु कृष्ण प्रेम को ही रेखांकित करते हुए बोल पड़े, “सखी! रूप संग प्रज्ञा होने से पुरुष का मन आकृष्ट होता है। तुझमें रूप और प्रज्ञा दोनों है। जैसे देह स्थित पंच भूत को योग युक्ति से परिष्कृत कर मन को स्वच्छ किया जाता है, वैसे ही पांचों पाण्डव को सार्थक बनाने का दायित्व तुम्हारा है।”

यह सुन कर द्रौपदी पहले तो झेंप गई और फिर गंभीर हो गई। कुछ ही क्षण के पश्चात द्रौपदी कुरु वंश के विषय में कृष्ण से फिर पूछ बैठी। ससुराल के विषय में कुछ जानने की उत्कण्ठा सभी नारी में होती है। वह पूछ बैठी, “सखा! कुरू वंश का इतिहास क्या सदैव से विडम्बनापूर्ण रहा है?”

प्रश्न सुनकर अर्जुन झेंप गया, किन्तु कृष्ण पहले तो मुस्कुराये और फिर बोले, “ ऐसी बात नही है, सखी! पुरु, कुरु, विदुरथ, हस्ती, प्रतीप इत्यादि के शौर्य गाथाओं को कौन नहीं जानता है? क्या वे सब विडम्बित इतिहास के दृष्टांत हैं? नहीं ना? बोलो!”

पहले तो द्रौपदी चौंक गई, फिर प्रश्न कर बैठी, “सखा! मत्स्यगंधा.....?”

द्रौपदी के प्रश्न के बीच में ही कृष्ण ने कहा, “इतराती यमुना नदी पर बलखाती नौका में बैठे पराशर मुनि ने दशराज कन्या मत्स्यगंधा को देखते ही जिस दिव्य मुहूर्त में रति भिक्षा की याचना की, वह विडम्बना नहीं, आशय सम्पन्न घटना थी और सार्थक भी।

द्रौपदी तत्क्षण प्रश्न कर बैठी, “आशय सम्पन्न कैसे?”

कृष्ण उत्तर देते हुये बोले, “मत्स्य जैसी दुर्गंध करने वाली से अभिसरण को विडम्बना नहीं, निःस्वार्थ विवशता कहो। वस्तुतः विनष्ट हो रहे क्रिया योग के बचाव और कुरुवंश की आधारभूत संरचना की रक्षा हेतु वह मुहूर्त एक उपकार पूर्ण घटना बन गई। महामुनि से परितृप्त मत्स्यगंधा को योजनगंधा में रूपान्तरित हो जाने से ही राजा शान्तनु की पत्नी बन पायी कृष्ण द्वैपायन की माता सत्यवती। रानी सत्यवती से जन्म हुआ चित्रांगद और विचित्रवीर्य का। जब दोनों ही निःसंतान रहे तो कृष्ण द्वैपायन व्यास से ही अम्बिका ने धृतराष्ट्र को, अम्बालिका ने पाण्डु को और दासी ने विदुर को जन्म देकर ना केवल कुरु वंश को, अपितु सम्पूर्ण संसार को उपकृत कर डाली।”

“ऊँह...! ऐसे में तो प्रजागण उपकृत नहीं कह, अपकृत ही कहेंगे,” यह कहकर द्रौपदी अपने दाँतों तले अपनी जीभ को भींच डाली।

"सखी! यह मत भूलो कि इन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों के द्वारा किया गया कोई भी कर्म तबतक अपकृत नहीं कहलाता जबतक मन की संलिप्तता ना हो। सारे पतन का कारण मन है। निष्काम कर्म और निःस्वार्थ कृत अपकृत नहीं होते। पराशर मुनि ने निःस्वार्थ कृत किया है।" यह कहकर द्रौपदी की आँखों में आँखें डालकर कृष्ण झांकने लगे।

अचानक कृष्ण सोच में पड़कर अन्यमनस्क सा हो गये और बोले, "तुम दोनों को 'शुभरात्रि'! तुम दोनों को शुभरात्रि कहने के लिए ही मैं यहाँ आया था, बातें करते-करते बहुत विलम्ब हो गई है। मैं अभी द्वारका जा रहा हूँ।"

"अभी! आधी रात को! निशार्द्ध में?" यह कहकर द्रौपदी विस्फुरित नेत्रों से कृष्ण की ओर देखने लगी।

"हाँ, सखी! अभी निशार्द्ध में ही जाना होगा। कहीं मेरी अनुपस्थिति में कोई द्वारका पर आक्रमण ना कर बैठे! द्वारका की प्रजा के प्रति मेरा दायित्व भी बनता है। इन्द्रप्रस्थ में रहते हुए बहुत दिन हो गये हैं।" यह कहकर कृष्ण बाहर झांकने लगे।

सारथी दारुक और सैनिकों से संरक्षित रथ से कृष्ण के द्वारका चले जाने के पश्चात रातभर द्रौपदी और अर्जुन के बीच तत्त्व ज्ञान पर ही चर्चा होती रही। चर्चा के अनन्तर अर्जुन ने द्रौपदी से पूछा, "कृष्णा! तुम विद्या, बुद्धि और ज्ञान में निष्णात हो। कृष्ण प्रेम में महाभाव कैसे होता है?"

इस पर द्रौपदी अकलुष मुस्कुराई और बोली, "क्या यह आर्यश्रेष्ठ को बताना पड़ेगा?"

"हाँ, कृष्णा! मुझे यथार्थतः समझाओ। तुझे वृंदावन की सभी जानकारियाँ है।" यह कहकर अर्जुन निर्निमेष द्रौपदी को देखने लगा।

नितान्त ही सहज होकर द्रौपदी बोली, "पहले विरति, रति तब भक्ति इन तीनों के बिना कृष्ण प्रेम असंभव है।"

"रति!" अर्जुन चौंकते हुए बोला।

द्रौपदी मुस्कुराकर बोली, "हाँ, आर्यश्रेष्ठ!"

अब मर्यादित भाषा में अर्जुन ने पूछा, "महाराज्ञी! शाब्दिक ठिठोली ना करो मुझसे। यथार्थ कहो।"

द्रौपदी गंभीर होकर बोली, " आर्यश्रेष्ठ को यथार्थ ही कहा है मैंने। ठिठोली नहीं की है। ब्रह्म में रति ही तो महारास है।"

द्रौपदी के विलक्षण ज्ञान ने अर्जुन को कृष्ण प्रेम से ओतप्रोत कर डाला। रात्रि का अवसान होने लगा, किन्तु द्रौपदी और अर्जुन के निभृत वार्तालाप का अवसान नहीं हुआ। सुबह होते-होते द्रौपदी अश्रुजल से छलछलायी नेत्रों के साथ अर्जुन से पूछ बैठी, "स्वामी! उलूपी, चित्रांगदा, सुभद्रा प्रभृति आपके जीवन में आईं। मुझमें क्या कमी रही?"

द्रौपदी के ऐसे वचन सुनकर अर्जुन के दोनों नेत्र अश्रुजल से डबडबा उठे। कर्तव्यपूर्ति के लिये अपनी भावना को प्रशमित करना पड़ता है। दूसरों के लिये जो जीता है, वही मानव है। प्रेम का आलिंगन करते हुए अर्जुन ने कहा, "कृष्णा! उलूपी या चित्रांगदा मात्र दायित्व निभाने के लिये है, सौदर्य पिपासा के लिये नहीं।"

द्रौपदी बोली, "परन्तु.....। इतना कहते-कहते उसके आँखों से आँसू टपक पड़े। वह कुछ बोल नहीं पायी।

अश्रुजल से डबडबायी अपने नेत्रों को पोंछते हुए अर्जुन ने पूछा, "परन्तु क्या? बोलो, कृष्णा!"

"आपके हृदय साम्राज्य की साम्राज्ञी अब सुभद्रा! मैं नहीं!," इतना ही कहकर द्रौपदी अपने दोनों होठ अन्दर की ओर भींच ली।

"ऐसा ना सोचो, कृष्णा! सुभद्रा तो यहाँ नहीं, द्वारका में रहेगी। तुम तो मेरी आत्मा में बसी हो। तुम्हारी जैसी पत्नी पाकर मैं धन्य हो गया हूँ। तुमने जितना दायित्व निभाया है, क्या कोई नारी निभा पायेगी? मेरे जीवन में आकर तुने मुझे सार्थक बना डाली है। उलूपी या चित्रांगदा या सुभद्रा मेरे हृदय से याज्ञसेनी को विच्युत नहीं कर सकतीं। सुभद्रा हो या कोई और, इन्द्रप्रस्थ की महारानी तो वे सब नहीं बन सकतीं! कथमपि नहीं। इन्द्रप्रस्थ की महारानी सिर्फ याज्ञसेनी ही रहेगी।" यह कहकर द्रौपदी को आतुर प्रेम का प्रगाढ़ आलिंगन देकर अर्जुन युद्धाभ्यास करने चला गया। याज्ञसेनी की दृष्टि प्रस्थान करते अर्जुन को तबतक निहारती रह गई जबतक वह ओझल नहीं हो गया।

कृपया रचनाकार को मेल भेज कर अपने विचारों से अवगत करायें